Vol. 6, Issue: 4, April: 2018
ISSN:(P) 2347-5404 ISSN:(O)2320 771X

प्राचीन काल में श्रुति की अवधारणा

डॉ. मनीष डंगवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर व विभाग प्रभारी
संगीत विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोटद्वार, उत्तराखण्ड

१. प्रस्तावना

प्राचीन कालीन, प्रायः सभी विद्वानों ने एक सप्तक में कुल बाईस श्रुतियाँ मानी हैं। तात्पर्य यह है कि किसी निश्चित नाद तथा उसके ठीक द्विगुणित उच्च स्थानीय नाद के मध्य अनेक नाद स्थित हो सकते है परंतु संगीत में उपयोगिता के आधार पर प्राचीन विद्वानों ने उन दो मूलभत नादों के मध्य कुल बाईस अति सूक्ष्म नाद पहचाने हैं जिन्हें कठिनाई से सुनने पर भी पृथक्–पृथक् पहचाना जा सकता है। इन्हीं बाईस नादों की संख्या बढ़ाने पर इन्हें पृथक–पृथक् पहचानना अत्यंत कठिन अथवा असम्भव हो जाता है। इन्हीं बाईस नादों को प्राचीन विद्वानों ने '**सांगीतिक श्रुतियाँ**' कहा है। ये बाईस श्रुतियाँ अनुरणनहीन मान गई हैं तथा इन्हें ही अनुरणित करने पर 'स्वरो' की उत्पत्ति होती है।

२. श्रुति

संगीत में नाद की अभिव्यक्ति 'स्वर' के माध्यम से होती है। तथा स्वर 'श्रुतियों' पर आश्रित हैं। नाद के अतिसूक्ष्म भेद 'श्रुतियाँ' कहलाते हैं। इन्हीं को पाश्चात्य संगीत में कहा जाता हैं। श्रुतियाँ, नाद के इतने सूक्ष्म भेद हैं कि इन्हें भिन्न –भिन्न पहचानना सर्वथा असम्भव है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्राचीन मनीषियों एवं विचारकों ने एक नाद व उसके द्विगुणित उच्च स्थानीय नाद के मध्य ऐसे बाईस नाद चुने जिन्हें पृथक–पृथक पहचाना जा सकता है। इन्हें ही संगीत में '**श्रुतियों**' की संज्ञा दी गई तथा गान कार्य प्रारम्भ किया गया।

३. श्रुति व्याख्या

संस्कृत भाषा की 'श्रु' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से 'श्रुति' शब्द बनता है जिसका प्रयोग, **श्रूयते अनया इति श्रुतिः'** अर्थात् जो सुनाई देता है वह श्रुति है, प्रायः इसी अर्थ में किया जाता है। मतंग मुनी ने भी बुहदेशी ग्रन्थ में कहा है –

श्रु श्रवणे चास्य धातोः क्तिं [न्] प्रत्ययसमुद्भवः।।[1]

अर्थात् श्रु धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाने से (श्रुति का) उद्भव होता है। प्रायः 'श्रुति' शब्द से कर्ण (कान), सुनने की क्रिया, वेद–साहित्य, विशिष्ट प्रकार की ध्वनि, जन प्रसिद्धि आदि अर्थो का बोध होता है। सामान्य व्यवहार की भाषा में, हर प्रकार की सुनाई देने वाली ध्वनि, 'श्रुति' कहलाती है। ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि प्रायः इसी सुनाई देने वाली ध्वनि तथा सुनाई देने की क्रिया, में ही 'श्रुति' शब्द का अर्थ समाहित है। यदा–कदा श्रुति शब्द का प्रयोग 'श्रवणेन्द्रिय' अर्थात् 'कर्ण' (कान) के रूप में भी होता है। इस रूप में श्रुति का प्रयोग संम्भवतः सुनने की क्रिया के कारण ही हुआ है। इस क्रिया को ध्यान में रखकर ही इस शब्द का प्रयोग 'विशिष्ट ध्वनि' या 'नाद' के रूप में भी किया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। प्राचीन काल में वेद साहित्य के लिए भी 'श्रुति' संज्ञा प्राप्त होती है। इसके लिए भी संम्भवतः उपरोक्त कारण ही उत्तरदायी है। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन ऋषि–मुनियों को ध्यान की गहन अवस्था में अनेक प्रकार की ध्वनियाँ

सुनाई देती थीं तथा अनेक मंत्र लिपिबद्ध रूप में दिखते थे। इन्हीं सुनी हुई ध्वनियों तथा दिखाई दिए गए मंत्रों को उन्होंने अपने शिष्यों को उपदेशित किया तथा लिपिबद्ध कराया। इस प्रकार वैदिक – मंत्रों का प्रादुर्भाव हुआ। कालांतर में इन्हीं मंत्रों के सम्मिलित रूप को वेदों के रूप में संकलित किया गया तथा उनका गान किया गया। इस प्रकार वेद–साहित्य मूल रूप से श्रवण संबधी क्रिया पर ही आधारित रहे। इसलिए 'वेद – साहित्य' के लिए भी, प्राचीन काल में 'श्रुति' संज्ञा प्राप्त होती है।

४. श्रुति परिभाषा

श्रवणेन्द्रिय तथा श्रवण क्रिया पर ही आधारित संगीत कला में भी 'श्रुति' शब्द का व्यवहार होता है, किन्तु संगीत में श्रुति का प्रयोग, मात्र सुनाई देने वाली ध्वनि के रूप में न होकर, अधिक सूक्ष्म रूप में होता है। प्राचीन विद्वान मतंग मुनि ने श्रुति को सामान्य रूप में ही परिभाषित किया है –**श्रूयत इति श्रुतिः।**[2] अर्थात् (जो) सुनाई देती हैं वह श्रुतियाँ हैं। उन्होंने आगे कहा है – **श्रवणेन्द्रियग्राह्यत्वाद ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत्।**[3] अर्थात् श्रवणेन्द्रिय से ग्रहण की जाने के कारण, ध्वनि ही श्रुति है। मतंग मुनि का ही अनुसरण नान्यभूपाल ने किया है –

अथ श्रुतयः।
'श्रुतिः श्रूयत' इत्येवं ध्वनिरेषोऽभिधीयते।[4]

ये श्रुतियाँ है। श्रुति को सुनो, यह ध्वनि है ऐसा कहा गया है। इस प्रकार नान्यभूपाल ने मतंग मुनि के समान ध्वनि को ही 'श्रुति' माना है। पूर्ववर्ती आचार्य–भरत मुनि ने अपने ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में श्रुति को महत्व नहीं दिया है। उन्होंने श्रुति का स्थान भी स्वर के पश्चात् माना है। उनके अनुसार श्रुति का बोध स्वतंत्र रूप से नहीं होता है। श्रुति, स्वर में अन्तर्निहित रहती है। उसका बोध स्वर के माध्यम से ही होता है, अतः उसका स्थान स्वर के बाद है। भरत मुनि ने श्रुति को पृथक् प्रयोजन नहीं माना है। उनके अनुसार श्रुति का प्रयोजन, विशिष्ट रीति में स्वरों की, उन पर स्थापना कर, '**ग्राम**' का निर्माण करना ही है। भरत मुनि के शिष्य दत्तिल, श्रुति को अधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित करते हुए कहते हैं –

उत्तरोत्तरतारस्तु वीणयां त्वधरोत्तरः।
इति ध्वनिविशेषास्ते श्रवणच्छुसिंज्ञिताः।।[5]

अर्थात् (कण्ठ में) उत्तरोत्तर बढ़ने पर (ध्वनि) तार होती है परंतु वीणा में नीचे की ओर बढ़ने पर तार होती है। इस प्रकार ध्वनि के परिवर्तन के कारण जो सुनी जा सकती है उसे **श्रुति** कहते हैं। इस प्रकार दत्तिल ने ध्वनि के पृथक्–पृथक् ऊँचे होते हुए भेदों को 'श्रुति' कहा है। नाट्यशास्त्र के टीकाकार अभिनवगुप्त श्रुति को अधिक सूक्ष्म रूप में परिभाषित करते हैं–

श्रुतिश्रच नाम श्रोत्रगम्यं यावता शब्दंनोत्पद्यते।[6]

जिस शब्द से सुनने योग्य वैलक्षण उत्पन्न होते हैं वह **श्रुति** है। यहाँ अभिनवगुप्त ने 'श्रुति' को मात्र ध्वनि रूप न बताकर, उसे ऐसा शब्द (ध्वनि) बताया है जिसमें विशेष लक्षण होने के कारण, अन्य शब्दों या ध्वनियों से पृथक् सुना जा सकता है। यह परिभाषा संगीत की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं –

श्रुतेः शब्दस्य श्रात्रग्राह्मस्य उत्कर्षस्तीव्रता अपकर्षो मन्दता,
तद्धेतुत्वान्मार्दवायते तु द्वे अपि तथोक्ते। एवं तीव्रमन्द्रत्वहेतुभ्यां
मार्दवायतत्वाभ्यां यदन्तरं यो विशेषावबोधः प्रमाणं निश्रचयकं यस्या सा श्रुतिः।[7]

क्षोत्रग्राह्म (सुनने योग्य) शब्द (ध्वनि) के उत्कर्ष में तीव्रता और अपकर्ष में मन्दता होती है, उनमें (अपकर्ष व उत्कर्ष) से मार्दव और आयत में तो, दोनों (मन्द व तीव्र) ही कहे जाते हैं। और तीव्रत्व व मन्द्रत्व के हेतु

(कारण) मार्दत्व और आयतत्व में जो अंतर, विशेष रूप से बोधित होता है तथा जिसका निश्चायक प्रमाण है, वह श्रुति है। अभिनवगुप्त द्वारा दी गई श्रुति की यह व्याख्या अत्यंत सटीक है। यहाँ उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि श्रुति, ध्वनि के उत्कर्ष एवं अपकर्ष किए जाने पर तीव्रत्व व मन्द्रत्व को प्राप्त होती है तथा वह ध्वनियों का ऐसा विशेष अंतर है जिसका अंतिम तथा प्रमाणिक रूप से बोध होता है।

दत्तिल तथा अभिनवगुप्त द्वारा दी गई ये परिभाषाएँ अत्यंत स्पष्ट हैं। संगीत में 'श्रुति' शब्द का सामान्य व्यवहार इसी रूप से होता है। यद्यपि मतंग मुनि, नान्यभूपाल आदि विद्वानों ने श्रुति को, मात्र सुनाई देने वाली 'ध्वनि–विशेष' रूप में परिभाषित किया है तथापि दत्तिल द्वारा प्रस्तुत व्याख्या के आधार पर कहा जा सकता है कि मतंगादि विद्वानों के काल से पूर्ववर्ती काल के विद्वान 'श्रुति' विषय पर स्पष्ट थे।

पं. शार्ङ्गदेव ने श्रुति को जिस प्रकार से परिभाषित किया है उसे प्राचीन कालीन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत श्रुति–व्याख्या का सार कहा जा सकता है। उन्होंने श्रुति की व्याख्या स्वर से पहले प्रस्तुत की हैं। श्रुति वर्णन के अंतर्गत पं. शाङ्गदेव ने केवल सुनाई देने के कारण की श्रुति को 'श्रुति' कहा है।[8]
किन्तु चतुःसारणा के अंतर्गत पं. शार्ङ्गदेव ने श्रुति को स्पष्टतः व्यक्त कर दिया है–

द्वे वीणे सदृशौ कार्ये यथा नादः समो भवेत्।
त्योर्द्वाविंशतिस्तन्त्र्य प्रत्येकं तासु चादिमा।।
कार्या मन्द्रतमध्वाना द्वितीयोच्चध्वनिर्मनाक्।
स्यान्निरन्तरता श्रुत्योर्मध्ये ध्वन्यन्तराश्रुतेः।।
अधराधरतीव्रास्तास्तज्ज्ञो नादः श्रुतिर्मतः।[9]

अर्थात् एक जैसी व समान नाद उत्पन्न करने वाली वीणाएँ लेनी चाहिए जिन पर बाईस–बाईस तंत्रियाँ स्थित हों। उनमें (दोनों वीणाओं में) प्रथम (तंत्री) मन्द्रतम ध्वनि में तथा द्वितीय (तंत्री) कुछ ऊँची ध्वनि में स्थित करनी चाहिए। (इस प्रकार प्राप्त) दोनों श्रुतियों (ध्वनियों) के मध्य निरन्तरता होने के कारण (उनके मध्य) अन्य ध्वनि नहीं सुनाई देती। उत्तरोत्तर तीव्र (ध्वनि वाली) होती है। उनसे उत्पन्न नाद, श्रुतिम कहा जाता है। तात्पर्य यह कि समान नाद उत्पन्न करने वाली दो सामान वीणाओं की, जिन पर बाईस तार हों, प्रथम तंत्री को मन्द्रतम मधुर ध्वनि में स्थित करना चाहिए। अब दूसरी तंत्री को प्रथम तंत्री से मात्र, इतना ऊपर की ध्वनि में स्थित करना चाहिए कि दोनों तंत्रियों से उत्पन्न नाद में अंतर स्पष्ट हो जाए परंतु उनके मध्य अन्य नाद या ध्वनि को स्पष्ट न पहचाना जा सके। इस प्रकार प्राप्त अतिसूक्ष्म अंतर वाली ध्वनियाँ '**श्रुतियाँ**' कहलाती हैं। पं. शार्ङ्गदेव कृत यह श्रुति व्याख्या अत्यंत सुगम एवं स्पष्ट है। परवर्ती काल के सभी विद्वानों ने श्रुति को पूर्णतः ग्रहण कर लिया । इस प्रकार अध्ययन कयरने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन कालीन विद्वानों ने संगीत में श्रुति की उपयोगिता को समझते हुए श्रुति को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। परंतु नारदीय शिक्षाकार ने, स्वरमण्डल में श्रुति का उल्लेख न यकरने के साथ ही उसे परिभाषित भी नहीं किया है। इससे संकेत प्राप्त होता है कि शिक्षाकार ने 'श्रुति' को अधिक महत्व नहीं दिया है।

५. श्रुति महत्व

यद्यपि नारदीय शिक्षा ग्रन्थ में श्रुति विषयक कुछ वर्णन प्राप्त होते हैं तथापि उसे अधिक महत्व नहीं दिया गया है। नारदीय शिक्षा के अध्ययन से संकेत प्राप्त होता है, कि संगीत में स्पष्ट रूप से प्रयुक्त होने वाले स्वरों को, उनमें सूक्ष्म रूप से स्थित रहने वाली श्रुतियों की अपेक्षा, अधिक महत्व दिया गया है। इस ग्रन्थ में स्वरों पर विस्तृत तथा श्रुतियों पर अत्यल्प चर्चा की गई है। शिक्षाकार ने अपने ग्रन्थ में स्वरमण्डल के अन्तर्गत सात स्पर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छना तथा उनचास तानों का तो वर्णन किया है जबकि श्रुति का उन्होंने उल्लेख भी नहीं किया है –

सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेक विंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाश्स–दित्येतत्स्वर मण्डलम्।।[10]

भरत मुनि ने भी श्रुति को महत्व न देते हुए उसका वर्णन स्वर के पश्चात् किया है तथापि उन्होंने अपने ग्रंथ में अन्य विषयों के साथ श्रुति का भी उल्लेख किया है –

स्वरा ग्रामौ मूर्च्छनाश्रच तानाः स्थानानि वृत्तयः।
शुष्कं साधारणे वर्णा ह्मलङ्काराश्रच धातवः।।
श्रुतयो यतयश्रैच्व नित्यं स्वरगतात्मकाः।
दारव्यां समवायस्तु वीणायां समुदाहृतः।।[11]

अर्थात् दारवी (लकड़ी की बनी) वीण में स्वर, दो ग्राम, मूर्च्छनाएँ, तानें, स्थान, वृत्तियाँ, शुष्क, साधारण (स्वर), वर्ण , अलंकार, धातुएँ तथा सदा स्वरों में निहित रहने वाली श्रुतियाँ, समान रूप से स्थित रहती हैं। भरत मुनि ने श्रुतियों का प्रयोजन, मात्र ग्राम के निर्माण में माना है। अन्य प्राचीन मनीषियो ने भी अपने ग्रन्थों में स्वरमण्डलों के अन्तर्गत श्रुतियों का वर्णन कर तथा उन पर विशद चर्चा कर, श्रुति को महत्व दिया है, परंतु शिक्षाकार ने श्रुति पर अत्यल्प चर्चा की है जिससे स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि उन्होंने श्रुति को महत्व नहीं दिया है स्वरमण्डल में शिक्षाकार ने स्वर के पश्चात् तीन ग्रामों का भी वर्णन किया है। इन तीन ग्रामों–षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम तथा गान्धार ग्राम पर कुछ चर्चा, ग्रंथ के प्रथम प्रपाठक की द्वितीय कण्डिका में भी की गई है। किन्तु ग्रामों के उल्लेखों के अन्तर्गत भी शिक्षाकार ने श्रुति का वर्णन नहीं किया है। शिक्षाकार ने स्वोल्लिखित किसी भी ग्राम की श्रुति–स्वर व्यवस्था का भी वर्णन नहीं किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने एक ग्राम के अन्तर्गत श्रुतियों की संख्या पर भी प्रकाश नहीं डाला है जिन पर व्यवस्थित ढंग से सात स्वरों को स्थापित करने पर 'ग्राम की सृजन होती है। स्वर के अन्तर्गत श्रुति की महत्ता के विषय में शिक्षाकार का कथन है –

यथाप्सु चरतां मार्गो मीनानां नोपलभ्यते।
आकाशे वा विहंगानां तद्वत् स्वरगताश्रुतिः।।
यथा द्धनि सर्पिः स्यात् काष्ठस्थो वा यथाऽनलः।
प्रयत्नेनोयपलभ्येत तद्वत् स्वरगता श्रुतिः।।[12]

अर्थात् जैसे जल में मीन (मछलियों) का या आकाश में पक्षियों का मार्ग ज्ञात नहीं होता, उसी प्रकार स्वर में श्रुति की स्थिति है। जैसे दही में घी या काष्ठ (लकड़ी) में अग्नि विद्यमान होती है तथा यवे प्रयत्न करने पर प्राप्त होते हैं उसी प्रकार स्वर में श्रुति की स्थिति है। शिक्षाकार का मत है कि जिस प्रकार पक्षियों एवं मछलियों के गमन करने के मार्ग का बोध नहीं होता तथा दही में घी व लकडीं में अग्नि छिपी हुई अवस्था में विद्यमान रहती हैं, वही स्थिति स्वर में श्रुति की है। शिक्षाकार ने आगे मत प्रकट किया है कि जिस प्रकार विशेष रीतियों से प्रयत्न करने पर घी व अग्नि की प्राप्ति होती है उसी प्रकार श्रुति को भी प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षाकार के उपरोक्त कथन से बोध होता है कि यद्यपि उन्होंने श्रुति को सहज ग्राह्म न होने के कारण महत्व नहीं दिया है तथापि उसे पूर्णतया महत्वहीन नहीं माना है।

६. श्रुति संख्या एवं संज्ञा

शिक्षाकार ने श्रुति की परिभाषा के समान ही उनकी संख्या एवं नाम का भी वर्णन अपने ग्रंथ में नहीं किया है तथापि संगीत में इनकी उपयोगिता के कारण इनका कुछ वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन कालीन, प्रायः सभी विद्वानों ने एक सप्तक में कुल बाईस श्रुतियाँ मानी हैं।

यद्यपि प्राचीन काल से ही प्रायः सभी विद्वानों ने श्रुतियों की संख्या बाईस मानी है तथापि इस विषय पर कुछ मतभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय संगीत के ऐतिहासिक क्रम के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में, ग्राम के निर्माण में श्रुति के महत्व का उल्लेख करते हुए, एक सप्तक में बाईस श्रुतियों का उल्लेख किया परंतु उन्होंने इनका नामोल्लेख नहीं किया है –

अथ द्वौ ग्रामौ षड्जग्रामो मध्यमग्रामश्रेच्ति। अत्राश्रिता द्वाविंशतिश्रुतयः स्वरमण्डलसाधिताः।[13]

मतंग मुनि ने बृहदेशी ग्रन्थ में श्रुतियों की संख्या के विषय में विभिन्न मतों का उल्लेख किया है–

श्रूयत इति श्रुतिः। सा चैकाऽनेका वा।
तत्रैकैव श्रुतिरिति।[14]

मतंग मुनि के अनुसार श्रुति एक अथवा अनेक हो सकती हैं। ऐसा कहने के पश्चात् मतंग मुनि ने श्रुति के एकत्व तथा अनुकत्व पर विशद चर्चा प्रस्तुत की है।[15] परंतु मतंग मुनी ने भी श्रुतियों के नामों की चर्चा नहीं की है। संगीत मकरंद ग्रन्थ में नारद ने एक सप्तक में बाईस श्रुतियाँ मानकर सर्वप्रथम उनके नामों का भी उल्लेख किया है– **सिद्धा, प्रभावती, कान्ता, सुप्रभा, शिखा, दीप्तिमती, उग्रा, ह्रादी, निर्विरी, दिरा, सर्पसहा, क्षांति, विभूति, मालिनी, चपला बाला, सर्वरत्ना, शांता, विकलिनी, हृदयोन्मलिनी, विसारिणी तथा प्रसूना।**[16] यद्यपि मकरंदकार नारद ने सर्वप्रथम बाईस श्रुति नामों का उल्लेख किया तथापि परवर्ती सभी ग्रन्थकारों एवं आधुनिक कालीन विद्वानों ने भी श्रुतियों के नामों के विषय पर नान्यभूपाल के मत का अनुसरण किया है। उनके अनुसार बाईस श्रुतियों के नाम हैं – **तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती, दयावती, रंजनी, रतिका (रक्तिका), रौद्री, क्रोधा, वज्री (वज्रिका), प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी, क्षिती, रक्ता, संदीपनी, आलापिनी, मदन्ती, रोहिणी, रम्या, उग्रा तथा क्षोभिणी।17** मध्यकालीन ग्रन्थकार पार्श्वदेव ने तीन सप्तकों में छियासठ श्रुतियों का उल्लेख किया है तथा उन सभ श्रुतियों के पृथक–पृथक् नामोल्लेख किए है परन्तु यह मत प्रचलित न हो सका।[18]

श्रुति संख्या एवं संज्ञा विषयक इस अध्ययन से संकेत प्राप्त होते हैं कि मतंग मुनि के काल तक श्रुतियों की संज्ञा निर्धारित अथवा निश्चित नहीं हो पाई थी एवं संगीत मकरंद काल तक श्रुतियों के नामों को निर्धारित करने के ठोस प्रयास नहीं किये गए थे तथा इस विषय पर भरत भाष्यम् काल निर्णायक सिद्ध हुआ।

यद्यपि नारदीय शिक्षा में श्रुति संख्या का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया गया है तथापि इस ग्रन्थ में प्राप्त कुछ कथनों से संकेत प्राप्त होता है कि शिक्षाकार को एक सप्तक अथवा ग्राम में स्थित रहने वाली बाईस श्रुतियों का ज्ञान था। इस विषय में सर्वप्रथम संकेत शिक्षाकार के ग्रामोल्लेख से प्राप्त होता है। शिक्षकार ने षड्ज, मध्यम तथा गान्धार तीन ग्रामों का उल्लेख किया है।[19] यह सर्वविदित है कि बाईस श्रुतियों पर सप्त स्वरों को क्रमानुसार किसी निश्चित व्यवस्था में स्थापित करना 'ग्राम' कहलाता है। अतः शिक्षाकारोक्त तीन ग्रामों के आधार पर कहा जा सकता है कि नारदीय शिक्षाकार में तत्कालीन विद्वानों को बाईस श्रुतियों का ज्ञान था। इसी प्रकार स्वरों के देवताओं का वर्णन करते हुए भी शिक्षाकार ने ग्राम के अन्तर्गत, पंचम व धैवत की ह्रास एवं वृद्धि होने का उल्लेख किया है –

सोमस्य पंचमस्यापि दैवतं ब्रह्मराट् स्मृतम।।
निर्हासो यश्चवृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत्।
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्वं विधीयते।।[20]

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार शुक्ल व कृष्ण पक्ष में सोम (चन्द्रमा) की वृद्धि व ह्रास होते हैं उसी प्रकार ग्राम में पंचम की भी ह्रास व वृद्धि होती है। उसी प्रकार धैवत का भी ह्रास व वृद्धि पंचम स्वर के समान होती

है। इस मत से भी आभास होता है कि शिक्षाकार को षड्ज व मध्यम ग्रामीय श्रुति–स्वर व्यवस्था का पूर्ण भान था। इसके अतिरिक्त शिक्षाकार ने ग्राम–राग वर्णन के अंतर्गत अंतर (गान्धार) व (निषाद) का भी उल्लेख किया है। परवर्ती विद्वानों के अनुसार गान्धार व निषाद को दो–दो श्रुत्युत्कर्ष करने पर क्रमशः अंतर गान्धार व काकलि निषाद की प्राप्ति होती है। अतः शिक्षाकार के उपरोक्त मत से भी आभास प्राप्त होता है कि यदि उन्हें श्रुतियों की अथवा उनकी संख्या की ठीक पहचान नहीं होती तो वे इन साधारण स्वरों– अतंर व काकलि स्वर, तथा भिन्न–भिन्न ग्रामीय पंचम व धैवत स्वरों को प्राप्त नहीं कर सकते थे। इस प्रकार ज्ञात होता है कि शिक्षाकार को श्रुतियों की बाईस संख्या को पूर्ण ज्ञान था।

७. सारांश

नारदीय शिक्षा में यद्यपि श्रुति की परिभाषा अथवा व्याख्या नहीं दी है तथापि उन्होंने भी श्रुति को महत्व दिया है। इसी प्रकार यद्यपि शिक्षाकार ने श्रुति–संख्या का भी उल्लेख नहीं किया तथापि ग्रामोल्लेख, साधारण स्वरोल्लेख तथा पंचम व धैवत की ह्रास एवं वृद्धि विषयक उल्लेखों से आभास होता है कि शिक्षाकार को बाईस श्रुतियों का ज्ञान था।

शिक्षाकार ने पांच श्रुति जातियों का भी नामोल्लेख किया है, परंतु वे श्रुति–जातियाँ अधिक स्पष्ट नहीं है। आयता जाति का प्रयोग नीचे के स्वरों में मृदु जाति का उसके विपरित अर्थात् उच्च स्वरों में तथा मध्या जाति का प्रयोग अपने स्वर में अर्थात् समान स्वरों में होता है। इस कथन से तात्पर्य यह भी हो सकता है कि अनुदात्त स्वरों में आयत, उदात्त में मृदु तथा स्वरित स्वरों में मध्या श्रुति–जाति का प्रयोग होता है परंतु श्रुति जातियों का प्रयोजन एवं उनके वास्तवित लक्षण अथवा स्वरूप के वर्णन प्राप्त न होने के कारण शिक्षाकारोक्त श्रुति–जातियों का उल्लेख किया है। इसके अंतर्गत शिक्षाकार ने द्वितीय स्वर (वेणु का गान्धार) की श्रुति जातियाँ–मृदु, मध्या तथा आयता बताई हैं। यदि वैदिक संगीत का द्वितीय स्वर, लौकिक संगीत का गान्धार है, जैसा सामान्यतया माना जाता है, तब यह तथ्य ध्यान देन योग्य है कि गान्धार स्वर द्विश्रुतिक स्वर है। इस प्रकार उपरोक्त कथन में यह भी स्पष्ट नहीं होता कि द्वितीय स्वर गान्धार है अथवा लौकिक संगीत का द्वितीय स्वर–ऋषभ। परवर्ती विद्वान नान्यभूपाल ने भी शिक्षाकारोक्त पांच श्रुति–जातियों का लौकिक स्वरों की बाईस श्रुतियों से सामंजस्य स्थापित किया परन्तु नान्यभूपाल का यह कथन कहाँ तक उचित है, यह भी पूर्ण स्पष्ट नहीं होता। इस प्रकार नारदीय शिक्षा में वर्णित श्रुति से सम्बद्ध अनेक शंकाएँ अनुत्तरित रह जाती हैं तथापि श्रुति विषयक आरम्भिक तथ्यों पर प्रकाश डालने के कारण नारदीय शिक्षा के कथनों का विशेष महत्व है।

नारदीय शिक्षा ग्रंथ में 'श्रुति' के अतिरिक्त अनेक अन्य विषयों पर भी विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं होते। सम्भवतः शिक्षाकार ने संक्षिप्तीकरण एवं वैदिक संगीत की शिक्षा को अधिक महत्व देने के लिए लौकिक संगीत के तथ्वों के लक्षणों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत नहीं की है। अतः नारदीय शिक्षा संगीत विषयक महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने पर भी, इसमें अनेक विषयों का आधारभूत उल्लेख ही प्राप्त होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

१. बृहदेशी–मतंग मुनि–डॉ. प्रेमलता शर्मा अ.1, प्र.3, श्लोक 24 पृ. 8
२. बृहदेशी–मतंग मुनि–डॉ. प्रेमलता शर्मा अ.1, प.3, अनु.1 पृ. 8
३. बृहदेशी–मतंग मुनि–डॉ. प्रेमलता शर्मा अ.1, प्र.3, अनु.2 प.10
४. भरत भाष्यम्–नान्यभूपाल–चैतन्य पुण्डरीक देसाई अ. 3, प्र. 5, श्लोक 82 पृ086
५. दत्तिलम्–दत्तिल–मुकुंद लाट श्लोक 1 प. 2
६. नाट्यशास्त्र–नाट्यशास्त्र टीका–अभिनवगुप्त–गायकवार्ड सिरीज़ अ. 28, पृ.19
७. नाट्यशास्त्र–नाट्यशास्त्र टीका–अभिनवगुप्त–गायकवार्ड सिरीज़ अ. 28, पृ. 21
८. संगीत रत्नाकर–पं. शार्ङ्गदेव–पं. एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री अ.1, प्र.3, श्लोक 8 पृ.80

९. संगीत रत्नाकर–प. शार्ङ्गदेव–पं. एस. सुब्रह्मण्यम शास्त्री अ.1, प्र.3, श्लोक 11–13 पृ. 83
१०. नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.2, श्लोक 4 पृ–7
११. नाट्यशास्त्र–भरत मुनि–गायकवार्ड सिरीज़ अ.28, श्लोक 13–14 पृ.8
१२. नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं. 6, श्लोक 16–17 पृ–28
१३. नाट्यशास्त्र–भरत मुनि–गायकवार्ड सिरीज़ अ.28, पृ.15
१४. बृहदेशी–मतंग मुनि–डॉ. प्रेमलता शर्मा अ.1, प्र.3, अनु.1 पृ.8
१५. बृहदेशी–मतंग मुनि–डॉ. प्रेमलता शर्मा अ.1, प.3, अनु.2–6,11, श्लोक 26 प.10–16
१६. संगीत मकरंद–नारद–लक्ष्मीनारायण गर्ग पादः1, श्लोक 78–84 प. 10–11
१७. भरत भाष्यम्–नान्यभूपाल–चैतन्य पुण्डरीक देसाई अ.3, प्र.5, श्लोक 93–95 पृ.99
१८. संगीत समय सार–पार्श्वदेव–आचार्य बृहस्पति अ.1, श्लोक 19–27 पृ.7–8
१९. नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.2, श्लोक 6 पृ.–8
२०. नारदीय शिक्षा–नारद मुनि–भट्ट शोभाकर प्र.1, कं.5, श्लोक 16–17 पृ.–23–24